॥ ओ३म् ॥

प्रभु से विनय

प्रभु! आप कैसी मेरी पवित्र माँ है। हे माँ! तू कितनी भोली है, तू कितनी पवित्र है। हम तेरे आँगन में आते हैं, तू विष्णु रूप से भी कहलाई गई है। शक्ति रूपों से भी तेरा प्रतिपादन किया गया है। माँ! तू कितनी भोली है। जब हम तेरे आँगन में आते हैं, तो ज्ञान और विवेक से युक्त होकर के आते हैं, माँ! वास्तव में तू हमारे हृदय का भरण कर देती है। तू, कैसी महत्ती है। तू कैसी ममतामयी है, बालक क्षुधा से पीड़ित हो रहा है माँ, ते उसे लोरियों का पान कराती हुई, उसकी क्षुधा और पिपासा को शान्त कर देती है। इसी प्रकार हे माँ! मैं तेरे द्वार पर, विवेकी बन करके आना चाहता हूँ। मुझे शक्ति दे, बल दे, ओज दे, तेज दे। जिससे माता मैं तेरी उस महान ज्योति का दर्शन कर सकूं। तेरी जो महान ज्योति है तेरी जो करूणामयी ज्योति है, जिस करूणा से हे विष्णु! आप संसार का लालन पालन करते हैं! मैं भी तेरे द्वार पर आना चाहता हूँ। उस पिपासा में मैं रमन करना चाहता हूँ। जिस पिपासा के लिए सदैव मानव अपने में ही परणित हो जाता है।

पूज्यपाद-गुरुदेव

अंक : 534 कुल पृष्ठ संख्या समग्र अंक : 609
वर्ष : 45 44 समग्र वर्ष : 51

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1. प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव	3
2. अनुक्रम		4
3. महाराजा दिलीप का पुत्रेष्टि याग	पूज्यपाद-गुरुदेव	5-17
4. महाराजा हनुमान का सूर्य विज्ञान	पूज्यपाद-गुरुदेव	18-31
5. ऋषियों के उद्‌गार		32
6. Creation, and the Institution of National Order	Pujyapad-Gurudev	33-37
7. दान, पुस्तकों की सूची व प्राप्ति के स्थान तथा सूचना इत्यादि		38-42

नम्र-निवेदन

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज ने अपने प्रवचनों में वेदमन्त्रों का गान करते हुए उनकी प्रचलित भाषा में व्याख्या की है। उसी अमृत वाणी को जनकल्याण के लिए ''सँहिता'' के रूप में प्रकाशित करने के लिए वैदिक अनुसन्धान समिति सभी श्रद्धालु एवम् दानदाताओं से सहयोग के लिए आह्वान करती है जिससे कि प्रकाशन का कार्य सुचारू रूप से ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होता रहे। सहयोग की राशि समिति के बैंक खाते में स्वेच्छानुसार भेजने के लिए बैंक का विवरण निम्न प्रकार से है :-

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)
पंजाब नैशनल बैंक, खान मार्केट, नई दिल्ली
बैंक खाता नं. - 0149000100229389, IFSC Code – PUNB–0014900
website : www.shringirishi.in
Email : contact@shringirishi.in

आप सभी को होली की हार्दिक शुभकामनाएँ।

।। ओ३म् ।।

महाराजा दिलीप का पुत्रेष्टि याग

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि परमपिता परमात्मा इस जगत् को धारण करने वाला है। हमारे अन्तर्हृदय में वह देव विद्यमान रहते हैं और उसकी ही मनोनीत अनुपम जो क्रियाएँ हैं वह चाहे इस पृथ्वी मण्डल में हों, चाहे मंगल और बुद्ध में क्यों न हों, परन्तु उसका जो क्रियाकलाप चल रहा है, अथवा उसमें जो क्रियाएँ रत्त हो रही हैं वे उस मेरे देव की प्रतिभा कहलाती है अथवा ये उसकी महानता का दिग्दर्शन हो रहा है, जिस महानता के दिग्दर्शन को ले करके मानव परम्परागतों से ही विचार-विनिमय करता रहा है। नाना प्रकार की शालाएँ, नाना प्रकार का विचार मानव के समीप आता रहता है और जितने भी दार्शनिक हुए हैं अथवा विज्ञानवेत्ता हुए हैं वे सर्वत्र देव की प्रतिभा अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान को चिन्तन में लाने का एक विषय बनाते रहते हैं। और उसके ऊपर मनन और चिन्तन होता रहता है।

मानो देखो इससे पूर्व काल में मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपने बहुत से विचारों को व्यक्त किया। इन विचारों में राष्ट्रीयता और इनके हृदय की जो विडम्बना है वो बड़ी विचित्रत्व को धारण किए हुए थी, जिनके ऊपर हमें भी आश्चर्य होता रहता है कि मानव इतनी विडम्बना करता रहता है और मानव का विचार एक सूत्र में लाने का है और

सूत्र एक महान पवित्र और सूत्रमयी धारा कहलाती है, जिसको हम आचार कहते हैं, उसी धारा को ले करके मानव अपने जीवन को उद्‌बुद्ध करता रहा है। जितना भी विज्ञान है और परमाणुवाद है, जितना भी विज्ञान है वह मानव के हृदय में, धाराओं में एक चिन्तन का विषय बन करके रहा है। इनके ऊपर हम परम्परागतों से एक महान विचार और चेतन्यवत् की प्रतिभा का दिग्दर्शन करते रहते हैं।

इसके पूर्व काल में हम राजा की और धेनु की कुछ चर्चाएँ कर रहे थे और धेनु की और राजा की ये चर्चाएँ कीं। ये धेनु है तो राष्ट्र है और राष्ट्र से तो धेनु है, दोनों का परस्पर समन्वय रहता है, दोनों का एक समय साम्यवत् विचार रह कर के एक-दूसरे की सम्मति और एक-दूसरे में पिरोया हुआ तारतम्य कहलाता है तथा एक सूत्र कहलाता है। जिसके ऊपर मुनिवरो! देखो परम्परागतों से ही मानव अपने में अन्वेषण करता रहा है, विचार-विनिमय करता रहा है। उसी सूत्र की चर्चाएँ हमारे ऋषि-मुनियों के क्षेत्र में होती रही हैं।

महाराजा दिलीप जी की इच्छा

इससे पूर्व काल में हम वसुन्धरा, धेनु और नन्दनी की चर्चाएँ करते रहे हैं। राजा उस नन्दनी की और धेनु की रक्षा करता रहा है। जब सर्वत्र राष्ट्र का भ्रमण करने के पश्चात् महाराजा दिलीप नन्दनी को ले करके अपने राष्ट्र में आए, मुनिवरो! बारह वर्ष का उन्होंने कठोर तप किया, बारह वर्ष नन्दनी के साथ और ऋषि-मुनियों का जो विचार और समन्वय होता रहा और आत्मा-परमात्मा की चर्चाएँ, मोक्ष और अमोक्ष की चर्चाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की चर्चाएँ उन वाक्यों में उनके तपस्या काल में ऋषि-मुनियों के उन्हें समागम से प्राप्त हुईं।

परन्तु जैसे हम उन वाक्यों को पूर्णता देना चाहते हैं—मुझे स्मरण है जिस सभा में ऋषि वशिष्ठ और विभाण्डक मुनि महाराज विद्यमान थे। महर्षि विभाण्डक ने और महात्मा वशिष्ठ मुनि, महाराज विश्वामित्र

नाना ऋषिवर विद्यमान थे, परन्तु यह विचारा गया कि जब महाराजा दिलीप का तपस्या का काल समाप्त हो गया है अब पता किया जाए कि वो क्या चाहते हैं? महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धती ने यह कहा कहो राजन्! आज तपस्या का काल पूर्ण हो गया, तुम चाहते क्या हो?' क्या इच्छा है तुम्हारी? तो महाराजा दिलीप जी ने यह कहा, प्रभु! ये जो हमारा वंश है इसमें महान् से महान् तपरस्वी राजा हुए, राष्ट्र नायक हुए हैं। परन्तु उसके पश्चात् भी राष्ट्र का जो भविष्य है मुझे अन्धकारमय दृष्टिपात आता रहा है और वह अन्धकार कैसा है? वह अन्धकार ऐसा है जो सहनीय नहीं है। हम उसको सहन नहीं कर सकते। पुत्र का न होना राजा के यहाँ एक राष्ट्र का अन्धकार दृष्टिपात आता रहा है। तो मुनिवरो! देखो महर्षि वशिष्ठ ने कहा, हे राजन् तुम ऋषियों के द्वारा पुत्र याग करो, पुत्र याग करने से देवताओं का हृदय में वास, आत्म-बल की विशेषताएँ, तुम्हारा परमाणुवाद पुनः से जागरूक हो जाएगा।

पुत्रेष्टि याग की प्रेरणा

महाराज दिलीप जी ने कहा कि प्रभु मुझे बारह वर्ष हो गए हैं, मैं कामधेनु और नन्दनी के गौ-दुग्ध ग्रस्त में याग कर रहा हूँ जिससे वायु मण्डल में वक्रता आ जाती है। महाराजा दिलीप जी के वाक्य सब स्वीकार कर परन्तु उन्हें भी यह ही प्रेरणा दी गई कि तुम पुत्रेष्टि याग करो। नाना प्रकार के उत्तम साकल्य को पान करना—महाराजा दिलीप जी प्रातःकालीन सूर्य जैसे मग्न होता है, प्रातःकाल में प्रकाश को ले के आता है इसी प्रकार महाराजा दिलीप सूर्य के साथ उदय होते ही अन्तर्हृदय में मग्न रहे हैं, अन्तर्हृदय में कुछ वाक्य का अनुभव हो रहा है। जैसे सूर्य नाना प्रकार की प्रतिभा देता है, नाना प्रकार का प्रकाश दे करके मानव के जनजीवन को पवित्र बनाता है, इसी प्रकार महाराजा दिलीप अपने मानवीय जनजीवन को ऊँचा बनाने के लिए मग्न हो रहे हैं।

साधना का द्वार

हमारे ऋषि-मुनियों ने यह कहा कि जो मानव साधना में रत्त रहना चाहता है वह प्रातःकालीन चार घड़ी के लगभग अन्तर्हृदय में मग्न होता रहता है, अपने परमाणुवाद को वह बलिष्ठ और देखो उल्लास देने वाला हो, उल्लास देता रहे जिससे अन्तरात्मा पुनः से पवित्रता की वेदी को अपनाने वाला हो। सूर्य जैसे रात्रि को अपने गर्भ में धारण कर लेता है इसी प्रकार देखो ये जो विज्ञानवेत्ता है जो महान् अपने अन्तर्हृदय को सूर्य से समन्वय कर रहा है, वह मग्न और अनन्यता की धारा में रत्त रहने के लिए तत्पर है।

याग की रचना

वह सदैव महाराजा दिलीप जी अपने में आनन्दित होकर के अपने में प्रकाश की धारा को अपनाकर के आनन्दमयी महानता की धारा को अपने में धारण करते रहे और उस धारणा का परिणाम यह हुआ कि महाराजा दिलीप ने पुत्र याग की रचना की। इसमें नाना ऋषिवर विद्यमान थे। महर्षि विभाण्डक और श्वेताश्वेतर भी विद्यमान थे, महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र विद्यमान हो करके मुनिवरो! देखो पुत्र याग की रचना की और पुत्र याग में सङ्कल्प होता रहता था, यजमान अपने में प्रसन्न हो करके सङ्कल्प करते हैं, श्रोताजन अपने में सङ्कल्प करते हैं।

वायुमण्डल को उसी प्रकार का निर्माणित करते हैं और उसके पश्चात् याग का प्रारम्भ होता है। उसी याग में उसी याग की अग्नि में तपा हुआ चरु यजमान सोपान करता है। पंडितगण भी उसी को पान करते हैं। यज्ञमय चरु को तपाया जाता है और उस चरु का पान किया जाता है। और वह परमाणुवाद की प्रतिभा का जन्म हो जाता है। विचार-विनिमय क्या? मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि याग प्रारम्भ हुआ, सङ्कल्पोमयी याग का प्रसारण आरम्भ हो गया।

याग में महर्षि चोटवत् का आगमन

जैसे राजा के यहाँ याग हो रहा था, तो कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि चोटवत् यज्ञशाला में आ पहुँचे। तो चोटवत् ऋषि महाराज के समीप उनके बहुत से शिष्य भी विद्यमान थे। चोटवत् ऋषि महाराज ने महाराजा दिलीप से कहा, तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, मैं पुत्रेश याग कर रहा हूँ। 'यागाम् भवतु वायुमण्डल लाभप्रियता' ऋषि ने कहा। वायुमण्डल का निर्माण कर रहे हैं दिलीप जी ने कहा। चोटवत् ऋषि महाराज ने कहा महाराज ऐसा क्यो कर रहे हो? उन्होंने कहा मैं अपने राष्ट्र के लिए उन्नत क्रियाकलाप कर रहा हूँ। मैं याग कर रहा हूँ, देवताओं को तो मेरे अन्तर्हृदय में यज्ञशाला में क्रियाकलाप कर रहा है, उन देवताओं को बलिष्ठ बनाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा, वे देवता कौन हैं तुम्हारे शरीर में? उन्होंने कहा, वह देवता मेरे शरीर में वायु, जल, तेजस्व को धारण करने वाले हैं।

उन्होंने कहा, बहुत प्रियतम, परन्तु ये जो तुम्हारा याग हो रहा है मैं इसकी प्रतिभा को अब तक नहीं जान सका हूँ, हे राजन्! उन्होंने कहा, प्रभु! जानने का प्रयास कीजिए। अग्न्याधान हो रहा था, समिधा अपने में प्रकाश दे रही थीं। समिधा के द्वारा ऋषि कहते हैं हे समिधा, तू प्रदीप्त हो करके प्रकाश को दे रही है इसका क्या तात्पर्य है? उन्होंने कहा, मानव वही प्रकाश देता है जैसे समिधा अपने को अग्नि में परणित कर देती है और वे समिधा उद्बुद्ध हो करके प्रकाश बनकर के आती है, इसी प्रकार जो मानव अपनेपन की प्रतिभा को नष्ट कर देता है और अपने को नष्ट करके दूसरों को प्रकाशित कर रहा है। तो समिधा जैसे अपनेपन को समाप्त करके प्रकाश देती है, ऐसे ही प्रत्येक प्राणी अपनी ममता को त्यागकर के, अहम् भाव को त्याग करके, संयमी बनकर के परमात्मा को साक्षी बना करके वे गौ प्रकाश में और दूसरे गौ प्रकाश में मिलाता है। बड़ी विचित्र बात ऋषि ने प्रकट की। वे समिधा के रूप में शब्दों की ध्वनियाँ ध्वनित हो रही हैं, इस ध्वनि को

अपने में कल्पना करता रहता है तो मानव कल्पना कर रहा है, वे ध्वनियों में परणित हो करके याग दूरियों के द्वारा जाना है। अब दूरी कहता है कि मानव को अपना हृदय याग में परणित करना चाहिए।

अग्रणीय प्रवृत्ति

जैसे यजमान ने अपने को समावेश कर दिया, तो मुनिवरो! देखो नाना साकल्य चरु के द्वारा भ्रमण करते हुए और ऊँची कल्पना करते हुए वे ज्यादा प्रवृत्ति में अग्रणीय बन गए और अग्रणीय बनने का परिणाम यह हुआ कि हम मानवता की इस महानता में परणित हो के अपनी महानता को ऊँचा बनाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। मेरे पुत्रो! देखो, यह याग एक माह तक पुत्रेश याग चलता रहा, न्योदामयी मन्त्रों का उच्चारण होता रहा। न्योदामय मन्त्रों का उच्चारण होता रहा, उसको मेरे प्यारे! स्वाहा कह करके वायुमण्डल में परणित करना है, अपने स्वार्थ के साथ में अपने में सुमति को धारण करना है, जिससे इसको कार्यरत किया और आध्यात्मिक याग क्रियाकलाप के महानता में परणित हो। तो विचार-विनिमय क्या? मैं अपने विचारों को दूरी में ले न जाऊँ, एक माह के पश्चात् में याग पूर्ण हुआ।

याग की दक्षिणा

जब याग पूर्ण होने लगा तो पूर्णता को प्राप्त करने के पश्चात् अब ब्रह्मा इत्यादि को दक्षिणा प्रदान की जाने लगी। जब दक्षिणा का समय आया तो मुनिवरो! देखो, गऊओं को प्रदान करने लगे द्रव्य मुद्रा को परन्तु **पुरोहित कहता है–यजमान से कहता है,** यजमान मैं तेरी गऊएँ और द्रव्य नहीं चाहता हूँ। मैं तेरी कामधेनु नन्दनी को ऊर्ध्वा में ले जाता हूँ। जैसे महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज को कामधेनु इन्द्र से प्राप्त हुई, ऐसे ही हे राजन्! तुम्हें भी ये कामधेनु इन्द्र से प्राप्त हुई थी, देवताओं की सभा से अब तो उसी गौ के द्वारा याग कर रहे थे, याग के कर्मकाण्ड की प्रतिभा को एक महान बना रहे थे। तो देखो

मैं, राजन्! यह चाहता हूँ पर मैं मुद्रा नहीं चाहता। मैं यह चाहता हूँ कि तुम्हारा राष्ट्र पवित्र बना रहे और तुम्हारे गृह में सुन्दर-पवित्र सुसज्जित सन्तान का जन्म हो।

जब राजलक्ष्मी उन्हें दक्षिणा प्रदान करने लगी तो मुद्रा तो देना ही था परन्तु देखो उन्होंने कहा प्रभु, मैं क्या दान देकर आपको दक्षिणा प्रदान करना चाहती हूँ, आप क्या चाहते हो? और ऋषि ने कहा हे देवी माता! मेरे हृदय की यह कामना है कि मैं तुम्हारे गर्भ से ऊँचे सन्तान को चाहता हूँ। जब पुरोहित ने यह कहा तो राजलक्ष्मी ने ऋषि से कहा हे प्रभु ये कैसे हो सकता है? उन्होंने कहा कि भगवन् मुझे आप बल दीजिए; शक्ति प्रदान कीजिए। उन्होंने उन्हें शक्ति प्रदान की, शक्ति की उन्हें निष्ठा कराई, वेद मन्त्रों की ध्वनियों का उद्गान गाने लगी। परिणाम यह हुआ उन्होंने ये सङ्कल्प कर लिया कि अपने गर्भ से ऊँचे सन्तान को जन्म अवश्य देंगी। गायत्राणी छन्दों का पठन-पाठन होने लगा और मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि महाराजा दिलीप जी की जो पत्नी सुलक्षणा थीं वे सदैव वेदों की ध्वनि में रत्त रहती थीं और राजा दिलीप जी भी इसी में रत्त रहते थे। ब्रह्मचरिष्यामि का पालन करते रहते थे। प्रत्येक मानव के हृदय में ये कामना बनी रहती है कि मैं ब्रह्मचरिष्यामि बनना चाहता हूँ। ब्रह्मचरिष्यामि तो विद्यालयों में बना करता है, ब्रह्मचारी यौगिक प्रतिक्रियाओं में रत्त रह करके अपने सङ्कल्प मात्र से ऊँचा बनता है।

महाराजा दिलीप और सुलक्षणा जी का जीवन

महाराजा दिलीप जी अपने में ब्रह्मचारी और तपस्वी तपश्चर कहलाते थे। उनकी पत्नी सुलक्षणा भी तपश्चर कहलाती थीं जिसके ऊपर उनकी महान प्रतिक्रिया व क्रियाएँ उनके जीवन की धाराओं का उद्बुद्ध होने जा रहा था। परिणाम क्या देखो राजा दिलीप प्रातःकालीन गऊओं की सेवा करते थे, गऊओं की सेवा करके, दुग्धाहार करते हुए

अपने जीवन का पालन और सुलक्षणा स्वयं कला-कौशल करती हुई उस अन्न को ग्रहण करती रहीं। राजा दिलीप और वह दोनों कृषि उद्गम करते, उस अन्न को पान करते, तपस्या में जीवन को व्यतीत करना, वह राजा का कर्त्तव्य है।

मेरे प्यारे! महानन्द जी ने इससे पूर्व काल में मुझे यह वर्णन कराया था कि रूढ़ियाँ समाप्त होनी चाहिए। मैं तो इतना रूढ़ियों को जानता नहीं। महानन्द जी विशेष जानते थे परन्तु देखो, **धारणा और मानवता को ऊँची बना करके जीवन को व्यतीत करना चाहिए।** राजा यह चाहता है कि मेरा राष्ट्र पवित्र बने, तो राजा स्वतेज पवित्र बनाना राजा को होगा। महाराजा दिलीप के काल में मैंने यह पान किया कोई राजा के राष्ट्र में हिंसक प्राणी नहीं था। सदैव अहिंसा परमोधर्मः को अपनाने वाला था, ऋषि-मुनि उद्गान गाते रहते थे, तो सिंहराज और सर्पराज भी उन प्रवृत्तियों को अपनाने वाले थे। मृगराज अपने में महान् रहता था परन्तु अपना-अपना क्रियाकलाप करता रहता। वह काल मुझे जब स्मरण आता है तो अन्तर्हृदय गद्गद् हो जाता है।

मैं अपने प्रभु से यही कहता रहता हूँ, हे प्रभु! राष्ट्र को कितना आत्मविश्वासी होना चाहिए। महाराजा दिलीप रात्रि समय अपनी प्रजा के द्वार-द्वार पर भ्रमण करते रहते थे कि कोई मेरे राष्ट्र में दुःखी तो नहीं है, अन्न से पीड़ित तो नहीं है। जैसा मेरे पुत्र महानन्द जी ने कहा था जिस राजा के राष्ट्र में देखो अपने-अपने मानवत्व को द्रव्य के बदले दे करके उदर की पूर्ति करता है वह राष्ट्र नहीं हुआ करता है। महाराजा दिलीप जी सदैव अपने राष्ट्र में नन्दनी को साथ ले करके भ्रमण करते रहते थे। गृह-गृह में प्रातःकालीन वेद ध्वनि हो रही है, याग हो रहे हैं, सब एक-दूसरे के ऋणी, राजा के राष्ट्र में जहाँ राजा प्रजा का ऋणी है और प्रजा राजा का ऋणी है, प्रजा-राजा दोनों न होने के तुल्य कहलाते थे।

महानन्द जी के शब्दों को कल मैंने इससे पूर्वकाल में भी हमनें श्रवण किया। मुझे इसके नीचे हृदय की विडम्बना हमारे हृदय की तो

कोई विडम्बना नहीं है। राजा रावण का ऐसा काल था जो राजा राम भी प्रजा को सुखी दृष्टिपात करना चाहता था। परन्तु देखो राम के काल में भी प्रतिदिन याग होते थे। राजा का राष्ट्र तो उस काल में, जैसा महानन्द जी ने पूर्वकाल में प्रकट किया, पवित्र होता है जब राजा एक महान् है, लगभग चार दिवस ब्रह्मवेत्ताओं के द्वारा अपने जीवन को वेदोमय करता और ऋषि-मुनि जो तपस्वी होते हैं, ब्रह्मज्ञानी होते हैं, ब्रह्मज्ञान मानव धर्म प्राप्त करता है। जिन राजा के राष्ट्र में गौ धेनु तपाये जाते हैं, **गौ धेनु कौन हैं?** विचार आता है प्रत्येक मानव की जो इन्दियाँ हैं, ये गौ कहलाती हैं ये तपी होती हैं, जानो यह जो विद्यालय महान् है।

दूषित अन्न की प्रतिभा

मुझे स्मरण आता रहता है जिस समय महाराजा उद्दालक मुनि महाराज अपने विद्यालय में शिक्षा ब्रह्मचारियों को देते थे, तो एक समय महर्षि गौतम भ्रमण करते हुए तो वेशतम राजा के यहाँ जा करके उन्होंने अन्न ग्रहण करना और वेशतम राजा ने अपना एक याग किया था और उन्होंने राष्ट्र को स्वयँ भ्रोभोव किया और भ्रोभोव में उन्होंने अन्न ग्रहण किया, उसमें कुछ दूषित अन्न की प्रतिभा का जन्म था, अन्न की प्रतिभा थी। तो ऐसा मुझे स्मरण है अर्ध रात्रि में उनकी बुद्धि भ्रमित हो गई और जब भ्रमित हो गई तो ब्रह्मज्ञान आने से नहीं आ रहा। जो तमोगुण की प्रवृत्ति थी वह बलवती बन गई, सतोगुण की प्रवृत्ति ने रजोगुण और तमोगुण दोनों अपने में समावेश कर लिया।

महर्षि गौतम मुनि महाराज प्रातःकाल हुआ। प्रातःकालीन जब याग प्रारम्भ हुआ तो उनके यहाँ विशिष्ट ब्रह्मचारी सत्यकाम ने याग का प्रारम्भ किया और पूज्यपाद गुरुदेव को कहा कि भगवन्! कोई ब्रह्मचारियों को उपदेश कीजिए। गौतम ने कहा कि मेरे हृदय में नहीं आ रहा है ब्रह्मचारी मैं क्या करूँ? ऐसा कहा जाता है मुनिवरो! देखो समाहित हो करके गुरु अन्तर्हृदय को अपने अन्तर्हृदय से मिलान किया,

गुरु के अन्तःचित्त के मण्डल को अन्तःकरण को अपने अन्तःकरण दोनों को जब मिलान किया तो गुरु का अन्तःकरण अन्तर्हृदय दूषित अन्न के प्रवाह से अशुद्ध तरङ्गों का जन्म हो रहा था, तो महर्षि आचार्य गौतम से कहा कि प्रभु आपके हृदय में अशुद्ध धाराओं का जन्म हो रहा है, आपकी बुद्धि भ्रमित हो गई है।

महर्षि गौतम का बारह वर्ष का अनुष्ठान

गौतम ने कहा, सत्यकाम यथार्थ कहते हैं। भगवन् अब क्या किया जाए? तो महात्मा गौतम ने उत्सव को पुनः लाने के लिए बारह वर्ष का अनुष्ठान किया और वह बारह वर्ष का कैसा अनुष्ठान? जल को पान करना है और वायुमण्डल से खेचरी मुद्रा में प्राणायाम करने से उस वायु में से पोषक तत्त्व को लेना है। बारह वर्ष का उन्होंने तप किया और तप करने के पश्चात् पुनः उनके द्वारा तपस्या की प्रतिभा, ब्रह्मज्ञान पुनः प्राप्त किया। तो वे राजा के यहाँ पहुँचे। बारह वर्ष के पश्चात् और राजा से कहा, हे राजन्! तेरा राष्ट्र पवित्र नहीं है, तेरे यहाँ राष्ट्र को जो अन्न आता है, वह दूषित है। तुम अपने-अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाओ। उनके यहाँ चार दिवस वायु का सेवन करके और राजा को ब्रह्मज्ञान कराके वह स्वतः प्रजा में अपने में एक-दूसरे के ऋणों से उऋण होने का प्रयास करते हैं।

पवित्र राष्ट्र

मेरे पुत्रो! देखो मुझे ऐसा स्मरण है कि इसी प्रकार यदि राजा को ऊँचा बनाना है। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने मुझे कल बहुत ऊर्ध्वा में आचार सँहिता के सम्बन्ध में चर्चा की। आचार्य उस काल में ऊँचा बनता है गौतम की भाँति अनुष्ठान करता है, तो उसका अनुसरण करने वाला ब्रह्मचारी बना करता है। ब्रह्मचारी कैसे ऊँचा बनता है विद्यालयों में? मेरे पुत्र महानन्द जी ने कल एक बात बहुत प्रिय कही मुझे लग रहा था कि आचार्यों के विद्यालयों में आचार सँहिता होनी चाहिए। जो आचार्य क्रोध

में तल्लीन होता है, क्रोध के पश्चात् उसे मोह की प्रतिभा का जन्म होता है, तो उसके विद्यालय में ब्रह्मचारी एक रस वाला ब्रह्मचारी का निर्माण नहीं हो सकता। एक रस वाला वहाँ होता है जहाँ आचार्य अपने हृदय से तपस्या करता है, अनुष्ठान करता है, प्राणायाम करता है, अन्न का शोधन करता है, प्राणायाम से वायु पोषक तत्त्वों से अपने जीवन की धारा का पान कर रहा है, तो ब्रह्मचारी उसका अनुष्ठान करता है।

वह ब्रह्मचारी विद्यलाय से निकल करके राष्ट्र में भी जाएगा तो अपने ब्रह्मज्ञान की प्रतिभा का प्रकाश देता रहे आधुनिक काल में जैसा मेरे पुत्र ने मुझे वर्णन कराया, वर्तमान के ब्रह्मचारियों की व्याख्या यही की है कि ब्रह्मचरिष्यामि को गमन करके ब्रह्मचरिष्यामि को नहीं लाया जा सकता। ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मचरिष्यामि वही बनता है जो ज्ञान के द्वारा जिसका शोधन होता है और जिसका केवल भय से शोधन करना चाहता है, शोधन नहीं होता। भय की प्रतिभा का विनाश होते ही मानव देखो वे पुनः निर्लज्जता में परणित हो जाता है। वह भी तपस्या नहीं कहलाती, तपस्या वह है जो ज्ञान के द्वारा ब्रह्मचरिष्यामि ब्रह्मचारी बनता है, जाप के द्वारा राष्ट्र अपने राष्ट्र का, कर्त्तव्य का पालन करता है, प्रजा के त्रास से नहीं। अपने अन्तर्हृदय के त्रास से जो राजा राष्ट्र का पालन करता है वह राष्ट्र पवित्र बनकर के रहता है और जो प्रजा की भयभीयता से लोकाचार से रहता है पवित्र नहीं होता।

पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा अध्यापन

बहुत पुरातन काल में एक सौ एक (101) वर्षों तक महाराजा अश्वपति के यहाँ अध्यापन का सौभाग्य मुझे प्राप्त होता रहा। मैंने ब्रह्मचारियों को दृष्टिपात किया। ब्रह्मचारी विद्यालय से जा रहा है उसके पीछे-पीछे आगे प्रकाश जा रहा है, आ रहा है ब्रह्मचारी आ रहा है ब्रह्मवेत्ता। परन्तु देखो जिस प्रकार की ध्वनियाँ होती रहती हैं, वो राष्ट्र व समाज में ब्रह्मचारी राष्ट्र की सम्पदा बन करके राष्ट्र समाज को ऊँचा बना करके रहता है।

महाराजा रघु का जन्म

आज मैं विशेष चर्चाएँ देने नहीं आया हूँ। विचार ये दे रहा था कि राजा दिलीप के यहाँ पुत्रेश याग हुआ और पुत्रेशयाग हो करके, उनकी पत्नी सुलक्षणा, महाराजा दिलीप के यहाँ उस याग के प्रभाव से ब्रह्मज्ञान नन्दनी के अनुष्ठान से उसके गृह में पुत्र का जन्म हुआ था, जिसका नामोकरण महाराजा रघु के नाम से उनका प्रतिपादन हुआ। महाराजा दिलीप के रघु हुआ था।

याग और गौ रक्षा पर बल

मैं ये चर्चाएँ तो आज देना नहीं चाहता हूँ। विचार केवल हमारा यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा, का गुणगान गाते हुए, राजा के राष्ट्र में याग होने चाहिए, याग की सुगन्धि होनी चाहिए, विचारों की सुगन्धि हो, वायुमण्डल में यागों की सुगन्धि हो, धनेध्य को धेनु धानी पवित्र होनी चाहिए और उसी के साथ गऊ की रक्षा होनी चाहिए।

मेरे प्यारे! महानन्द जी गौ-रक्षा के विचार देते रहते हैं, हम भी देते रहते हैं। किसी भी काल में ऐसा नहीं हुआ जहाँ गऊ की रक्षा न हो। गौ चाहे इन्द्रिय रूप में हो, गौ चाहे पशु रूप में हो? गौ चाहे सूर्य की किरणों के रूप में हो, गौ चाहे पृथ्वी बनकर के रहे, इनकी सदैव रक्षा होती रहती है और देखो ऐसा काल नहीं आया इसकी ध्वनियों में ध्वनित होने वाला समाज अपने में समर्थ नहीं हो पा रहा।

परन्तु आज का विचार-विनिमय क्या? हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान करते हुए, सदैव अपने जीवन को नवीन बनाते रहें, क्योंकि विचारों में वृद्धपन नहीं हो सकता है। सदैव सत्य ही रहता है वृद्धपन वहाँ रहता है, वृद्धपन वहाँ आता है जहाँ मानव की अन्तःकरण से मृत्यु हो जाती है। ये आज का विचार हमारा क्या कह रहा है? आज का विचार ये कह रहा है कि हमारा

राष्ट्र यहाँ विचारों में इस प्रकार पवित्र हो आहारमय विज्ञान बहुत ऊर्ध्वता वाला होना चाहिए।

प्रकाश में ओत-प्रोत होने की प्रेरणा

मैं इससे पूर्व–कल समय मिलेगा हनुमान के विज्ञान की चर्चाएँ कल प्रकट करेंगे कि हनुमान जी ने सूर्य को कैसे अपने मुखारबिन्दु में लिया और उन्होंने पूजा का कैसे प्रचार किया। ये चर्चाएँ हम कल प्रकट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त होने जा रहा है। मैंने ये वाक्य पुनरुक्तियाँ भी कीं, जो होती रहती हैं। अपने विचारों में विद्यायुक्त हो करके अपने जीवन को महान बनाना ये हमारा कर्त्तव्य है। आहार और व्यवहार जब तक पवित्र नहीं बनेगा, जब तक पवित्र नहीं बनेगा जब तक रूढ़ियाँ महानन्द जी के कल्पनानुसार समाप्त नहीं होंगी और रूढ़ि समाप्त नहीं होगी तो राष्ट्र भी पवित्र नहीं बनेगा, क्योंकि वेद नाम प्रकाश का है और वेद का प्रकाश जब तक राजा के राष्ट्र में, राजा के गृह में, उसके हृदय में ओत-प्रोत नहीं हो जाता तब तक राष्ट्र वेदी कदापि नहीं बन सकती।

ये आज का विचार समाप्त और वेद का पठन-पाठन होगा। इसके पश्चात् हमारा वाक्य ये क्या कह रहा है कि **प्रत्येक गृह में याग होना चाहिए।** यागों की चर्चा पुनः-पुनः हम करते रहते हैं। आज का वाक्य समाप्त, वेदों का पठन-पाठन।

वेद पाठ .....

पूज्य महानन्दजी–अच्छा भगवन्! आज्ञा।
पूज्यपाद-गुरुदेव–ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

दिनाँक : 28 फरवरी, 1985
समय : दोपहर 3 बजे
स्थान : लाक्षागृह बरनावा

।। ओ३म् ।।

महाराजा हनुमान जी का सूर्य विज्ञान

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है, क्योंकि वह परमपिता परमात्मा वरणीय माने गए हैं।

जो भी मानव उसे अपना वरणीय बना लेता है अथवा उसे वर लेता है उसी को प्राप्त हो जाता है। तो इसलिए प्रत्येक मानव को उस परमपिता परमात्मा को अपना वरणीय स्वीकार कर लेना चाहिए, क्योंकि वह वरणीय महान् और पवित्र कहलाता है। जिसकी महानता का दिग्दर्शन मानव के हृदयों में परणित रहता है और महापुरुषजन सूक्ष्म चिन्तन करते हुए उसे अपने अन्तर्हृदय में उसका दिग्दर्शन करते रहते हैं जो कि साधना के क्षेत्र में परणित हो जाता है।

परमात्मा का दिग्दर्शन

वे शान्त मुद्रित हो करके उस परमपिता परमात्मा को अन्तर्हृदय में ध्यानावस्थित हो जाते हैं। तो इसलिए परमपिता परमात्मा वरणीय माने गए हैं। जो भी मानव उसका वरण कर लेता है, उसी को प्राप्त हो जाता है। इसलिए हमारे ऋषि-मुनि उस परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार की उड़ाने उड़ते रहे हैं। और उनकी उड़ान बड़ी विचित्र रही है। कोई वैज्ञानिक बन करके उसको बाह्य जगत में

उसका दृष्टा और उसको अपने में दृष्टिपात बाह्य जगत में कर रहा है। **जो अपने अन्तर्हृदय में और बाह्य जगत् दोनों को अपने में समावेश करना जानता है, वह परमात्मा का दिग्दर्शन करता है, उस महान देव को अपने में दृष्टिपात करता रहता है।** जिससे मेरे प्यारे! उस परमपिता परमात्मा की अनुपमता अथवा महानता का प्रायः दर्शन होता रहता है।

आज का हमारा वेद मन्त्र हमें कुछ प्रेरित कर रहा है, हमें कुछ अपने में अपनेपन का दिग्दर्शन करा रहा है क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र में संसार का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। जितना भी ज्ञान और विज्ञान है वह प्रत्येक वेद मन्त्र में निहित हो करके दृष्टिपात आता है। जब मैं उस परमपिता परमात्मा की महती और उसकी आनन्दमयी ज्योति को अपने में धारण करने का समावेश वेद मन्त्रों में दृष्टिपात अथवा उसकी निहितता का दर्शन करते हैं तो वह काल स्मरण आने लगता है, जिस काल में अपने वेद की आभा मन्त्र को लेकर के नाना प्रकार के यज्ञों का निर्माण करते रहे हैं। नाना प्रकार के विज्ञान में, धाराओं में रत्त रहे हैं।

सूर्य निगला नहीं जाता

हमारे यहाँ बहुत पुरातन काल हुआ–वह त्रेता का काल था जिस काल में मुनिवरो! देखो, ऋषि मुनि अपने में विद्यमान हो करके विज्ञान की उड़ानें उड़ते रहते, नाना प्रकार की आभा में रत्त रहा करते थे। मुझे एक समय प्यारे! महानन्द जी ने ऐसा प्रकट कराया, उसका उत्तर तो प्राप्त हो गया, परन्तु वह वाक्य बड़ा विचित्र मुझे दृष्टिपात हुआ कि मानव समाज कहता है कि महाराजा हनुमान ने सूर्य को अपने मुखारबिन्दु में परणित कर लिया था और उसको निगल लिया था। वह निगला नहीं जाता, सूर्य निगला नहीं जाता है उसकी विद्या को निगल लिया करते हैं।

महर्षि काकभुषण्ड जी महाराजा हनुमान के प्रश्नोत्तर

मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि लोमश और महर्षि काकभुषण्ड जी और महाराजा जामवन्त मुनिवरो! देखो महाराजा हनुमान एक स्थली पर विद्यमान थे। तो काकभुषण्ड जी से एक प्रश्न किया गया। हनुमान जी बोले कि प्रभु मैं सूर्य विद्या को निगलना चाहता हूँ, कैसे निगलूँ? काकभुषण्ड जी ने कहा कि तुम विज्ञान के माध्यम से निगलना चाहते हो या योग अभ्यास के द्वारा, प्राणों के द्वारा निगलना चाहते हो? तो महाराजा हनुमान ने कहा कि मैं दोनों प्रकार से उसके निगलने की प्रतिक्रिया को जानना चाहता हूँ। तो महाराजा काकभुषण्ड जी ने महर्षि लोमश मुनि से कहा कि महाराज इसका उत्तर दो। ये बाल्य युवा क्या कह रहा है? उन्होंने कहा प्रिय, वाक् तो यथार्थ है, परन्तु उत्तर आप ही दीजिए।

सूर्य विज्ञान का अनुसन्धान

महर्षि काकभुषण्ड जी ने कहा कि **बाह्य जगत में ये जो सूर्य है यह अग्नि बन करके रहता है।** ये उदय बन करके रहता है, यह भाष्कर बन करके रहता है, सूर्य के नाना पर्यायवाची शब्द हमारे वैदिक साहित्य में आते रहते हैं। परन्तु भाष्कर इसलिए कहते हैं वह भासता रहता है, सदैव प्रकाश देता रहता है, उदय इसलिए कहते हैं क्योंकि वह उदय होता है, प्रकाश को ले करके उदय होता है, इसलिए उदयी कहते हैं। वही सूर्य अदिति कहे जाते हैं क्योंकि अदिति बन करके यह ग्रहों की धारा को ले करके इस रात्रि को अपने में निगल जाता है।

सूर्य के भिन्न-भिन्न बावन रूप धारण करके उस रात्रि को अपने गर्भ में धारण कर लेता है। **तो ये जो सूर्य है इसको तुम निगलना चाहते हो, तो तुम सूर्य की किरणों के माध्यम से यन्त्रों का निर्माण करो।** महाराजा हनुमान ने कहा, प्रभु मेरी एक विज्ञानशाला है। मैं और महाराजा गणेश जी हम दोनों समुद्र के तट पर सूर्य के ऊपर अन्वेषण

कर रहे हैं। बहुत समय हो गया, अन्वेषण करते हुए, परन्तु उसकी प्रतिक्रिया को आपसे और जानना चाहते हैं। महर्षि काकभुषण्ड जी बोले, मेरे विचार में तो हे हनुमान तुम इस विद्या को निगलना चाहते हुए, इसके ऊपर तुम्हें अनुसन्धान करना होगा अथवा विचार करना होगा।

एक-एक किरण को वह अपने में शोधन कर रहे थे। महाराजा हनुमान और गणेश जी दोनों ने किसी काल में एक यन्त्र का निर्माण किया था, जो यन्त्र मुनिवरो! देखो, वह सूर्य की किरणों के साथ गति कर रहा है और सूर्य की परिक्रमा कर रहा है। वही सूर्य विज्ञान में उसकी ऊर्जा को ले करके उससे विद्युत धाराओं को ग्रहण करते यन्त्रों में लेते रहते, और मुनिवरो! देखो तो उससे वह राष्ट्र का जीवन ऊँचा बनता। मानव समाज में प्रकाश आता रहता है।

देखो महाराजा हनुमान के जीवन को दृष्टिपात किया कि उनका जीवन बड़ा विचित्र रहा है। सूर्य की किरणों के साथ एक समय यन्त्र में वह गति कर रहे थे। गति करते हुए वह सूर्य की ऊर्जा से ही इस पृथ्वी मण्डल पर गमन करना और देखो ऊर्ध्वान करना, ऊर्ध्वा में दोनों में प्रायः गति करते रहते। तो मुनिवरो! देखो, मुझे ऐसा काल स्मरण है कि वह अपने यानों में विद्यमान हो करके सूर्य की किरणों से यान गति करता था। सूर्य की किरणों से यान गति करके वे चन्द्रमा की यात्रा में र त्त हो जाते थे। कहीं वह बुद्धेश्वर की लोकों की यात्रा करने में तत्पर रहे।

योगाभ्यास से सूर्य विद्या का चिन्तन

मुझे स्मरण है काकभुषण्ड जी से चर्चा हो रही है, काकभुषण्ड जी यथोचति उनका उत्तर दे रहे हैं। काकभुषण्ड ने कहा कि तुम्हारा जीवन धन्य है। तो महाराजा हनुमान ने कहा, प्रभु मैं तरङ्गोंवाद में जाना नहीं चाहता हूँ। मैं तरङ्गों से उपराम होना चाहता हूँ। मेरा अन्तर्हृदय यह कहता है मुझे निर्णय कराइए कि हे प्रभु मैं योगाभ्यास से उसका

चिन्तन कैसे कर सकता हूँ? देखो काकभुषण्ड जी ने कहा कि प्रभु, हे राजप्रहे! हे राग विज्ञानाम्! हे हनुमान! जब यदि तुम योगाभ्यास से उसको पान करना चाहते हो, तो प्राणों का सञ्चय करना होगा, प्राणों में खेचरी मुद्रा को लाना होगा और मुद्रा को ला करके अपने अन्तर्हृदय में अपने आन्तरिक ब्रह्माण्ड में जाना होगा। और आन्तरिक ब्रह्माण्ड में जो बाह्य जगत में ब्रह्माण्ड में जो क्रिया हो रही हैं उन्हीं क्रियाओं को जब योगी अपने अन्तर्मन आत्माओं में दृष्टिपात करने लगता है, तो वह महान और पवित्रतम् प्राणों का अपने में सिञ्चन करता है। क्योंकि जितना भी संसार का ज्ञान और विज्ञान है वह मनों की धाराओं से मिल रहा है। जहाँ तक मन की उड़ान है, वहीं तक विज्ञान पञ्च महाभौतिक तत्त्वों में ज्ञान अपने में निहित रहा है अपने में रत्त होता रहा है। तो विचार आता रहता है कि अपने तक ही मानव को मानवीय मन की आभा को जानना है। मन से जब प्राण का समावेश कराया जाता है, वह अपने में सुसज्जित हो जाता है।

महान् योगेश्वर

मुनिवरो! देखो, जो योगी एक-दूसरे प्राण को पूर्व प्राण में पिरोना जानता है अथवा उसको सूत्र बनाकर के सूत्रित करना चाहता है, देखो वह महान् योगेश्वर है और बाह्य-आन्तरिक ब्रह्माण्ड दोनों का दिग्दर्शन करता हैं। योगेश्वरों की चर्चाएँ एक समय महर्षि श्वेताश्वेतर अपने आसन पर विद्यमान हो करके नागप्राण को वह आदित्य में पिरोना चाहते थे, देवव्रत में पिरोना चाहते थे। देवता तो राजप्रहे दोनों का समावेश हो करके मुनिवरो! देखो वह अपान में जब परणित हो गए, तो अपान में–अपान को समान में और समान को व्यान में, व्यान को उदान में और उदान को मुनिवरो! देखो प्राण अपान का समावेश करके तो ब्रह्माण्ड में जो ये नाना प्रकार की निहारिका दृष्टिपात आती हैं। जितनी भी प्रक्रिया हैं उन प्रक्रियाओं में से सूर्य का क्रियाकलाप हो रहा है। उन किरणों का अपने में समावेश करने वाला योगश्वर बन जाता है।

चित्त का स्वरूप

जितना भी यह जगत् है वह चित्त के मण्डल में विद्यमान है। चित्त के मण्डल में है और चित्त का मण्डल मन के साथ है। मन का समावेश उदान प्राण के साथ है, उदान प्राण का सम्बन्ध देखो अन्तरात्मा में रहता है। अन्तरात्मा से इस सबका समावेश हो करके इस ब्रह्माण्ड का खिलवाड़ बना करके, ब्रह्माण्ड को अपने में और अपने को ब्रह्माण्ड में दृष्टिपात करने लगते हैं।

महर्षि काकभुषण्ड जी और महर्षि लोमश मुनि जी का अनुष्ठान

मुझे स्मरण आता रहता है मुझे बहुत पुरातन काल की वार्ताएँ, काकभुषण्ड और लोमश जी की मैंने तुम्हें कई काल में चर्चाएँ की हैं। जब अनुष्ठान लोमश मुनि जी करते थे तो काकभुषण्ड जी कृतिका को जानते थे और जब काकभुषण्ड जी अनुसन्धान, अनुष्ठान करते तो लोमश मुनि इंगला-पिंघला दोनों का एक-दूसरे में समावेश मानव वृत्तियों में रमण करा करके उसमें वेद विप्रतियों में परणित कराते रहते थे।

सङ्कल्प शक्ति महान रहे

विचार-विनिमय क्या? काकभुषण्ड जी ने कहा हे हनुमान कि तुम योग के द्वारा यदि उस महान् सूर्य को अपने में सिञ्चन करना चाहते हो तो जानो कि देखो दस प्राण कहलाते हैं–प्राण, अपान, व्यान, उदान व समान और नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म और कृक्कल। देखो नाग को देवदत्त में, देवदत्त को कृक्कल में, कृक्कल को स्वाति में और मुनिवरो! देखो एक-दूसरे के प्राणों को प्राण की समावेशता दृष्टिपात आती रहती है। यह सत्सङ्ग सङ्कल्प शक्ति के द्वारा ये प्रतिक्रियाएँ होती रहती हैं परन्तु देखो वह अपान में प्राण को, अपान में–अपान को व्यान में, व्यान को समान में और समान को उदान में, उदान तो चित्त के मण्डल का एक दृश्य कहलाता है। **उदान में तो चित्त मण्डल रहता है** जहाँ जन्म-जन्मांतरों के संस्कारों को योगेश्वर अभ्यास करके अपने

में दृष्टिपात करता रहता है। कैसा यह विचित्र जगत् है, **यह अपान और प्राण का कैसा जगत् है।**

जब प्राण और अपान को योगेश्वर अपने विज्ञानशाला में सम्मिलान करता है, अणु और परमाणु का मिलान करने लगता है, तो मुझे स्मरण आता रहता है, मैंने बहुत चर्चाएँ की हैं परन्तु दृष्टिपात भी किया गया है। एक समय दण्डक वन में एक ऋषि रहते थे, जिनका नाम विभाण्डक कहलाता था। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज के मानो पुत्र एक और जिनके नाना ऋषिवर जिसमें मुनिवरो! देखो, महर्षि सोम और महर्षि पारित्व भी उनके समीप रहते थे। एक समय वह अपने में अन्वेषण कर रहे थे। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज अपने में एक-दूसरे में समावेष्ठा चाहते थे। प्राण को चित्त के मण्डल में, चित्त के मण्डल को देखो समस्त समष्टि में रत्त करना चाहते हैं। जहाँ वृष्टि और समष्टि का समावेश होता है, वहीं तो योगी को इस ब्रह्माण्ड का दिग्दर्शन होता है। तो जब ऋषिवर अपने में अन्वेषण, अनुसन्धान एक-दूसरे में समावेश की चर्चाएँ होती हैं। तो प्रत्येक मानव को अपने में महान् बनने की आवश्यकता है। प्रत्येक मानव को जीवन की धारा को अपनाने की आवश्यकता है जिससे मानवीय जीवन एक पवित्रतम् बनता चला जाता है।

आओ मेरे पुत्रो! मैं कहाँ चला गया हूँ। मैं गम्भीर विचारों में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार तो—मैंने तुम्हें कई काल में चर्चाएँ की थीं। मुनिवरो! देखो जब सङ्कल्प शक्ति के द्वारा मानव ऊर्ध्वागति को प्राप्त होता है, इसलिए मानव की सङ्कल्प शक्ति में एक महानता रहनी चाहिए। सङ्कल्प शक्ति से ही मानव जीवन को ऊँचा बनाता है। सङ्कल्प शक्ति से ही मुनिवरो! देखो अपने को जगत् में समावेश कर लेता है। तो परिणाम क्या? मुनिवरो! देखो, वह जो समावेशता है, विचार की महानता है, उन विचारों में मानव को रत्त रहना चाहिए। जिससे मानव का अन्तर्हृदय वैज्ञानिकता में परणित करता हुआ सूर्य की किरणों में रत्त रहकर के उसमें गति करने वाला हो। तो मैं आज विशेष

चर्चाएँ न करता हुआ, विशेष वार्ता हम प्रकट नहीं करना चाहते। विचार यह देना चाहते हैं कि हमारा जीवन उस विज्ञान में रत्त रहे।

महर्षि काकभुषण्ड जी की अनुभव की चर्चाएँ

जब हनुमान जी से काकभुषण्ड जी ने ये चर्चाएँ कीं तो उन्होंने कहा प्रभु आप अपना प्रयोगात्मक कुछ मानो अनुभूति प्रकट कराइए। जब हनुमान जी ने यह कहा तो काकभुषण्ड जी बोले कि हम अनुभव की बात क्या प्रकट करें, वह तो संसार के बहुत कुछ हैं, परन्तु उन अनुभव के उपरान्तता को हम प्राप्त होने जा रहे हैं। अनुभव की चर्चाएँ जब काकभुषण्ड जी ने कीं, काकभुषण्ड जी ने यह कहा कि एक समय मैंने हनुमान जी अनुष्ठान किया था, और मैंने बारह वर्ष का अनुष्ठान किया। और बारह (12) वर्ष में मैं पत्र और पुष्पों को चूर्ण बनाकर के उसको मैं पान करता रहा, एक-एक वर्ष का अनुसन्धान, अनुष्ठान कर रहे थे। तो आत्मा बलवान् और बलिष्ठता को प्राप्त हो गया। जब वह बलिष्ठता को प्राप्त हो गया, तो इससे हमें प्रतीत हुआ कि हमें अपने जीवन में बलिष्ठता को लाना है, पवित्रता को लाना है, जिसके लाने के पश्चात् मानव का जीवन पवित्र बनता है। अनुभूति आभा वाला हमारा जीवन बनता रहता है। तो विचार क्या? ऋषि ने कहा कि मैंने एक समय अनुष्ठान अपान और प्राण को दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास किया और प्रयास करके उसमें ऊर्ध्वता प्राप्त हो गई।

महाराजा हनुमान का जीवन

वह उनके अनुभव लेकर के महाराजा हनुमान ने भी जहाँ वह विज्ञान में पारंगत थे वहाँ ब्रह्मचरिष्यामि में भी पारङ्गत थे। वे ब्रह्मचर्य की ऊँची-ऊँची उड़ानें उड़ते रहते थे। हनुमान के जीवन में एक घटना है कि उन्होंने एक सन्तान को जन्म दिया थां अपने जीवन में। एक सन्तान थी जिस सन्तान को जन्म दिया 'अप्रहोसम्भवा पातालंवृही ऊर्ज्या' वह पातालपुरी में रहते थे। वह पातालपुरी में अपने जीवन को

व्यतीत करते थे। वह हनुमान का एक ही पुत्र था, जिसे वह दीक्षा देने में लगे हुए थे, परणित होने की धाराओं में रत्त रहना उनका एक महान् व्रत था। वे महान् बनते चले गए।

मैं यह विचार दे रहा हूँ कि मानव को अपनी मानवता और यौगिकता को अपने से दूरी नहीं जाने देना चाहिए। वे सदैव उसमें समावेश होती रहें।

मुनिवरो! देखो चित्त के मण्डल में जब वह दृष्टिपात करते थे तो उसे नाना कामधेनुएँ दृष्टिपात होने लगतीं। यह तो ब्रह्माण्ड है, जगत् है यह महानता वाला प्रियतम है, जिसको अपना करके मानव को सागर से पार होने का प्रयास करना चाहिए। अब मुनिवरो! देखो विद्यालयों में जब अन्वेषण करने वाला विज्ञान, में रत्त होता है। महाराजा हनुमान एक यन्त्र को लेकर के चले 'चित्र दधि ब्रह्मा वाचो रचितम् याकृतम् ब्रह्मा' यह वाक् प्रायः आता रहता है और यह वाक् कहता है कि मानव को अपनी मानवता को यदि ऊँचा बनाना है, पवित्रता को एक सूत्र में लाना है, महानता का दिग्दर्शन करना है, विचित्रता की धाराओं को अपने में लाने का प्रयास करना है, तो इनका जीवन इस सम्बन्ध में एक वरणीय है, वाचप बनकर के रहा है उसके ऊपर मानव अपनी मानवता को न्यौछावर कर देता है।

मैं विचार यह दे रहा हूँ कि मुनिवरो! वे नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करते हैं, और निर्माण करके हनुमान के द्वारा एक यन्त्र ऐसा था जिस यन्त्र में विद्यमान होकर के वे देखो चन्द्रमा के पृथ्वी के दोनों की आकर्षण-शक्ति जहाँ मिलन करते हैं वहाँ अपने यन्त्र को स्थिर करते और स्थिर करके वह यन्त्र उनका सूर्य की ऊर्जा से गति करता है, सूर्य की ऊर्जा में रत्त रहता है, उनकी महानता का दिग्दर्शन अपने में महान् रहा है, विचित्र रहा है। तुम्हें कई काल में प्रकट भी किया है कि हम अपने जीवन में सदैव महान् की महानता को जानना चाहते हैं, जानकर के मानव को एक मानव का भास हो जाए, मानव की प्रतिभा उसके समीप आ जाए।

तुम्हें बहुत पुरातन काल में बतलाया था कि वह सूर्य की किरणों के द्वारा नाना प्रकार का अनुष्ठान करते रहे और उस अनुष्ठान का परिणाम यह हुआ कि वे मुनि लोग जहाँ आध्यात्मिकवाद जहाँ वह भौतिकवाद दोनों में रत्त रहते थे, दोनों में सुगठित होकर के दोनों की धाराओं में प्रायः वह परणित रहे। तो मुनिवरो! देखो, महाराज हनुमान के एक ही पुत्र था, उसके पश्चात् वह ब्रह्मचरिष्यामि। **ब्रह्मचरिष्यामि का अभिप्राय क्या है?** वह मानव एक ही सूत्र में अपने ब्रह्म को चरी में परणित कर देता है, वह ब्रह्मचरिष्यामि कहलाता है।

मानव को महान् और पवित्र जीवन बनाने की प्रेरणा

आओ मेरे पुत्रो! मैं विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। परन्तु परिचय कराने के लिए चला आता हूँ। मानव को अपने जीवन का परिचय दे देना चाहिए और वह परिचय क्या है? जिस परिचय को लेकर के मुनिवरो! देखो, मानव विज्ञान में परणित हो जाता है, योग में प्रवेश कर जाता है। तो मुनिवरो! देखो जिसके मण्डल में और अपने वृत्तियों के मण्डल में भी अन्तर्द्वन्द्व रहता है, इन दोनों में अन्तर्द्वत्ता रहती है, परन्तु यह आश्चर्य और वृत्तियों की विशेष एक आभा में कहलाता है।

विचार-विनिमय क्या? हमें अपने जीवन को ऊँचा रखना है, जीवन को ऊँचा बनाना है। हे माता, तुझे वेद वसुन्धरा के नामों से वर्णन करता रहता है, तू वसुन्धरा कहलाती है। हे माता वसुन्धरा, तू प्रायः हमारा कल्याण करने वाली है, हे माता वसुन्धरा, तेरे ही गर्भ में यह दृष्टिपात होने वाला अनुपम जगत् है, जगत् के ऊपर चारों ओर परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए अपने देव की महिमा का गुणगान गाना चाहिए। जिस आनन्दमयी गान गाने से मानव के हृदय में पवित्रता आती है। गान एक पवित्रतम् क्रियाकलाप है, भिन्न-भिन्न रूपों में हमें वह दृष्टिपात आता रहता है, जिसको दृष्टिपात करने के पश्चात् जीवन एक महान् और पवित्र बन करके रहता है।

'अप्रतभूब्रह्मावाचो देवो ब्रह्मविष्णु' वह सूर्य विष्णु कहलाता है, पालन करने वाला है, पालना अथवा धेनु मानव का समावेश हो जाता है। इसलिए उसकी धारा को हमें जानना है। देखो, माता का इसमें बड़ा सहयोग रहता है, वह वसुन्धरा है और वसुन्धरा के गर्भ में यह समूह ब्रह्माण्ड विराजमान है। एक समय महाराजा हनुमान और गणेश जी ने एक यन्त्र का निर्माण किया, इसको स्वाती नक्षत्र, **स्वाती वेदकेतु** कहते हैं। सर्वत्र अपने में विद्यमान होकर के उस यन्त्र के समीप जाना, उसकी आभा को जानना, उसकी मानवीयता पर विचार-विनिमय करना। तो मुनिवरो! यह बड़ा सुशोभनीय विषय बन जाता है। मैं विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ।

मैं तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ कि मानव को अपने जीवन में महानता और प्रभु का परिचय देना चाहिए। वास्तव में प्रभु का कोई परिचय दे नहीं पाता, क्योंकि प्रभु अनन्तता में रत्त रहने वाला है। वह आभा को अपने में धारणा करके और जीवन को पवित्र बनाने में लगा हुआ रहता है। तो महाराज हनुमान के जीवन में ये नाना घटनाएँ, नाना विचार-विनिमय होते रहे हैं। इन विचारों को लेकर महाराजा हनुमान संसार को निहारता रहा है। उन्होंने एक समय, बेटा! देखो अपने यान का निर्माण किया। इस यान को **स्वावृत्तिका** कहते हैं। वह यान को अमृत करते हुए सूर्य की किरणों के साथ उस यान में विद्यमान होकर के वह गति किया करते थे। उस गति का परिणाम यह होता 'शोभाकरु सम्भवालोकाम् सम्भवे विद्रभागां वाचन्नम्ब्रह्मलोकाम् वाचो सम्भवाः'। हमें इन वाक्यों पर विचार-विनिमय करना है, इनके ऊपर हमारा जीवन प्रायः ऊँचा बने, प्रायः हम धारा में रत्त रहने वाले हों। परन्तु देखो, विचार-विनिमय क्या कह रहा है? हम परमपिता परमात्मा की प्रायः आराधना करते रहें, देव की महिमा का गुणगान गाया जाए। यह है बेटा! आज का वाक्, 'अप्रहोसम्भवा लोकाम् वाचन्नम् ब्रह्म ही का सम्प्रहे वाचादधि ब्रह्मवाचो देवाः' अपने यानों में विद्यमान होकर के वे मंगल

में, मंगल में क्या बुध में, बुध में क्या मुनिवरो! देखो, चन्द्रमा में और चन्द्रमा से आगे नाना लोकों में उड़ान उड़ना उनका एक क्रियाकलाप बन गया था। उनकी धाराएँ उनको अपने में जहाँ वह परमाणु के ऊपर अन्वेषण करते, उसी के उपरान्त वह नाना प्रकार के विज्ञान में सदैव रत्त रहने वाले अपने को ऊँचा बनाना जीवन की धाराओं को पवित्रता की वेदी पर ले जाना यही मानव का कर्त्तव्य कहलाता है।

महाराजा हनुमान की भाँति अपने में, यन्त्रों में विद्यमान हो करके उड़ान उड़ता हुआ सूर्य की किरणों के साथ मंगल में चला गया, मंगल के कुछ वैज्ञानिकों से उनका मिलन हुआ और मिलन होकर के वार्ताएँ प्रकट हुईं, परन्तु देखो, वार्ताओं के प्रकट होने पर सम्भूति वाचन्नम् ब्रह्मा वे सम्भूति और रुद्रकेतु नामक अपने जीवन को नामों और उनकी धाराओं में रहकर के महानता का दिग्दर्शन होता रहा है। तो विचार-विनिमय क्या? नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर की उड़ान उड़ने वाले ब्रह्मचरिष्यामि अपने में महानता को धारण करने वाले जीवन को सुन्दर बनाना, यह प्रायः हमारा कर्त्तव्य कहलाता है।

आज का विचार हमारा क्या कह रहा है? हम विज्ञान की वार्ता को दे रहे हैं। विज्ञान की कुछ चर्चाएँ हो रही थीं, परन्तु देखो, उसके पश्चात् विज्ञान एक मौलिक रूप बन करके रह गया है, विज्ञान एक खिलवाड़ बन करके रह गया। विज्ञान उस काल में पवित्र बना करता है जो पुरातन काल में वाक् प्रकट किए थे कि प्रत्येक मानव अपने-अपने कर्त्तव्य को जानने का प्रयास करे। माता-पिता जब अपने कर्त्तव्य को जान लेते हैं तो बाल्य ऊर्ध्वा में गति करते हैं। उनकी ऊर्ध्वा महान बन जाती है। तो पवित्रतम् यह ऊर्ध्वा प्रायः हमें अपने जीवन की धाराओं को अपना करके और परमपिता परमात्मा की महती को जान करके और ऋषि-मुनियों का जीवन अनुकरण करने से बनता है, यह विज्ञान है।

मुनिवरो! एक समय महाराजा हनुमान व गणेश जी भ्रमण करते हुए श्वेताश्वेतर के आश्रम में पहुँचे। श्वेताश्वेतर ने कहा, कहो आगमन

कैसे हुआ? उन्होंने कहा, प्रभु 'आपं ब्रह्मबाचोः सम्भवा देवाः' वह भ्रमण करते हुए अपने यान में विद्यमान हो करके सूर्य की किरणों के साथ उनका यान चलता रहा है, गति कर रहा है। सूर्य की नाना प्रकार की जो किरणें हैं, उन्हीं को तो लेकर के यान गति करता है। वह द्यौ और गृह उन्होंने इस चरित्र का निर्माण किया जैसे शब्द अन्तरिक्ष में गति कर रहा है, वह शब्द की छाया आ रही है गति होने की और उसकी छाया का प्रतिबिम्ब उस रूप में पोथियों में भी जैसा पोथियों में है परन्तु ऐसा ही क्रिया में लाने का उन्होंने प्रयास किया।

अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके, वैदिक क्रियाओं से सदैव नियुक्त होना चाहिए। क्योंकि देखो यही तो मानवीय धारा एक आभा में परणित रहती है। परन्तु देखो, उसमें विद्यमान हो करके वे सूर्य की किरणों के साथ गति करते हुए उनका एक यन्त्र उसकी जहाँ शब्दों की छाया आती है। यन्त्र उनके आकार को दृष्टिपात करता है तो वह यन्त्र जो अन्तरिक्ष में हमारे शब्द की वाणी ध्वनित हो रही है, ध्वनियाँ विद्यमान हैं उनका, उनकी तरङ्गों से यन्त्रों में उनकी धारा विद्यमान हो जाती है। तो परिणाम यह होता है कि अन्तरिक्ष में रहने वाला जो शब्द विज्ञान है, जिससे मानव का आत्मा पवित्र बनता है, जो अपने में विचित्र कहलाता है।

मेरे प्यारे! आज का हमारा विचार अब हमें क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते रहें और आराधना करते हुए जीवन को पवित्र बना कर अपने जीवन की महानता को जानने का प्रयास किया जाये, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा सदैव उनकी दृष्टियों में निहित हो रहे हैं। परमपिता परमात्मा जब निहित हैं तो उसकी धारा भी निहित रहती है, उसका ये विज्ञान अपनी स्थलियों पर एक धारा बन करके रहता है। आध्यात्मिक विज्ञान इसी का रूपान्तर है। वह अपने नेत्रों और अपने शरीर को शोधन में लगाना, वही तो शोधन करते हैं।

शोधन कौन करता है? जो 'यागाम् भविते देवाम् यागाम् रुद्रयागाम् भवेत् सम्भवानवा ब्रह्माय'। आज का हमारा वाक्य यह हमें क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जान करके अपने जीवन को उलट कर रहे हैं। परन्तु हे परमात्मन्! आप तो महान हैं। आप पवित्र हैं, आप मानवीयता को धारण करने-कराने वाले हैं। परन्तु आज का हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है? हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए विज्ञान में रत्त रहकर के जब इस प्रकार वैदिक मन्त्रों की जहाँ ध्वनियाँ प्रारम्भ होती हैं वहाँ उनकी प्रवृत्ति देख करके अपने जीवन की धाराओं को अपने तक सीमित बना देती है। तो विचार-विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार से पार होना चाहते हैं। ये है बेटा! आज का वाक्य।

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम परमपिता परमात्मा को अच्छे प्रकार जानने वाले बनें। परमपिता परमात्मा की महती को जान करके ऊर्ध्वा गति में प्राणी अपने को ऊँची उड़ान उड़ रहा है। मेरे प्यारे! महाराजा हनुमान और देखो ये घटोत्कच भी उनके द्वारा विज्ञान से ऊँचा उठे। परन्तु समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। आज का वाक् समाप्त होने जा रहा है। अब शेष वार्ताएँ कल प्रकट हो सकेंगी। तो आज का यह वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा, इसके बाद वार्ता समाप्त।

वेद पाठ .....

पूज्य महानन्दजी–अच्छा भगवन्! आज्ञा।
पूज्यपाद-गुरुदेव–ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

दिनाँक : 1 मार्च, 1985
समय : दोपहर 3 बजे
स्थान : लाक्षागृह, बरनावा

॥ ओ३म् ॥

ऋषियों के उद्‌गार

1. यज्ञोपतीव का अभिप्राय है यज्ञ के समीप पवित्र हो करके जाना क्योंकि वह परम पवित्र है।
2. योगाभ्यास उसी को कहते हैं जहाँ प्राण की गति को और मन की गति, दोनों का समावेश किया जाता हो।
3. जहाँ मन और प्राण दोनों सुचारू रूप से अपनी एक गति में आ जाते हैं उस समय मानव की प्रवृत्ति चंचल नहीं होती।
4. मन को यदि एकाग्र करना है तो प्राण में इसका समावेश कर दो।
5. विभाजन करने वाला संसार में मन है और विभाजन जिसका किया जाता है वह प्राण कहलाता है।
6. यजमान का सौभाग्य होता है जब वह देवताओं का साकल्य अग्नि में प्रदान करता है त्यागपूर्वक। इससे बड़ा मानव का कोई और सौभाग्य संसार में हो नहीं सकता।
7. सुगन्धि ही तो मानव का जीवन कहलाया जाता है।
8. जो ब्रह्मचर्य से रहता है वह ऋषि कहलाता है।
9. संसार में यज्ञ होने चाहिए। प्रत्येक गृह में प्रातःकाल, साँयकाल यज्ञ होने चाहिए।
10. वेद का पठन-पाठन जितना होगा वातावरण पवित्र होगा।
11. सत्य के उच्चारण करने में मानव को कदापि भी दूर नहीं रहना चाहिए इसलिए मानव समाज विचारशील बनना चाहिए।
12. जब हम अपने को अपने प्रभु के समर्पित कर देते हैं तो वह माता बन करके हमें ज्ञान और महत्ता की लोरियाँ प्रदान करा देती है।
13. सुन्दरता को यज्ञ कहा जाता है, उत्थान नाम को यज्ञ कहा जाता है।
14. संसार में हिंसा मानव को भ्रष्ट कर देती है और अहिंसा मानव को सुदृढ़ बना देती है।

Creation, and the Institution of National Order

What led to Mahabharatha war ?

O Sages; If two pupils of the same preceptor with daggers drawn, came to rack and ruin, what could be the Cause ? It is a matter worth reflection.

In accordance with the traditions set by Lord Manu, the student could receive education by going to their preceptor's 'ashrama' irrespective of their rank and status in the society. It was an established practice that the preceptor (The Guru) first studied the intellectual make-up of his would-be disciples in order to ascertain their respective aptitudes for the type of instructions they were individualy fit for. Bhishma Pitamaha (grand sire Bhishma) invited his preceptor Parshu Ram. The latter having come, gathered together both the Kauravas and the Pandavas. After closely examining their qualities of the head and the heart, he said to Bhishma, "These pandavas deserve training in archery whereas the Kauravas, with the exception of one or two, are not fit for the same." The grand sire Bhishma was in a fix and said to himself as to how could the administration of the country be carried out if the Kauravas were deprived of the training. Parshu Ram had further added that if he gave them the training, they would bring nothing but ruin to themselves as well as to others. He would train them under no circumstances. Thus he left the place. The grand sire Bhishma considered that both the Kauravas and the Pandavas were alike to him.

O Sages; From there onwards the old system of education radically changed. The Guru would go to the disciple to impart instructions rather than the disciple going to the 'Guru' for being obliged.

As things would have it, Guru Dronacharya had once been insulted by Raja Dropada. Just to seek revenge, Dronacharya took a vow that he would teach an appropriate lesson to Dropada. He reached Hastinapur. When Bhishma learnt about his arrival he invited and urged upon him, to

train the princes in the skill of archery. On examining the disciples very minutely, Dronacharya found that all the five Pandavas Vikram and Prite only deserved to be trained while the remaining had perverted tempers and as such did not deserve being trained. When he was about to speak to Bhishma, it struck him that if he told his mind to Bhishma, how could his aim to humiliate Dropada be fulfilled. He started giving instructions to both (The Kauravas and the Pandavas). This decision was based on hatred. It bore its fruit. The Mahabharatha war was fought.

O Sages ! Lord Krishna did his best to prevent war. With this objective in mind, he approached Duryodhana and tried to persuade him to part with a small territory to the Pandavas for their sustenance. Duryodhana, however, refused point-blank and did not agree to part with even an inch of land. On hearing thus, Krishna observed that the war was inevitable.

O Sages ! Lord Krishna was a great personality of the age. He was above worldly temptations. Though he was born in the prison-cell of Raja Kansa, he rose to great heights. Once Mahanandji said, "it is alleged that Krishna had sixteen thousand consorts." People did not understand the meaning behind. It simply means that Krishna had sixteen thousand vedic verses by heart and carried on research upon those mantras (for full details of Lord Krishna's life, see next Chapter "Lord Krishna.")

How great was the Mahabharat war ?

O Sages ! Rajas from distant countries turned up in large numbers either to participate or simply to witness the war. Among them was one Raja Ambrik, When he met Lord Krishna the latter asked him about the purpose of his visit. Ambrik expressed his keen desire to witness the war. Lord Krishna probed him again whether he only wanted to act as an on-looker or would like to participate in the warfare. The Raja replied that he was willing to fight if the could get an opportunity to do so. Krishna asked him as to what he meant by 'getting an opportunity'. He replied that he would fight on

behalf of the losing party. He told that he possessed three nuclear weapons and that one of them was so powerful that after destroying the two contending armies, the weapon would come back to him intact. At that Krishna said to Arjuna that Ambrik would be a stumbling block in their way and would not permit them to fight freely. What was to be done under the circumstances ? Lord Krishna said to him, "Undoubtedly you are a great scientist and a mighty warrior. But what is the extent of your generosity and charity ?" The Raja contended that he could offer whatever asked for. Lord Krishna asked for his head in charity. The Raja agreed to it and resolved to witness the war. Lord Krishna said that he could watch the war but could not use any part of his body in it. Raja agreed to this and Lord Krishna so arranged that he could witness the warfare only.

O Sages ! All such developments of physical sciences only lead to total annihilation. Even visits to the Moon, Mars and other planets can not bring about peace. All the deadly weapons strike terror inthe people's mind. Fear and disturbed state of mind can only be dispelled by high character and noble intellect. Discriminating faculty and character can be cultivated by having implicit faith in God and a cultured system of education. This will awaken our conscience. The awakening, in its turn, will establish peace in this world for which man has aspired since times immemorial.

The Mahabharata war destroyed the Kshatriya Dharma and wiped off scientists and thinkers as well. This led to the spread of ignorance all through the world.

Decline of Vedic knowledge after the Mahabharata War, (through Rishi Mahanand's Soul)

O Sages ! After the Mahabharata age, Raja Parikshit, son of Abhimanyu happend to be a great king. His son Janmejai had ennobled himself by performing 'Sarvasava' Yajna. He had given away all his wealth in charity on the occasion. Maharishi Jaimini was appointed the Brahma. He accomplished

the Yajna with great ability. After renouncing his kingdom, he devoted his life to the worship of God.

King Janmejya's successors did not prove to be noble and virtuous rulers like him. O Sages ! Thence onward ignorance began to spread all over. The Brahmanas forgot the Vedic knowledge gradually and this, in turn, led to the decline of the war skill of the Kshatriyas. The 'Samnyasins' (the ascetics), who were the exponents of Dharma, became selfish. This led to the formation of various factions which gave rise to hatred. People forgot the teachings of Lord Manu. Decline in the character of both the ruler and the ruled appeared as a result of mutual hatred and bickerings. This led to the formation of many religious sects. At this juncture an atheistic sect called Vam-Margi, came into existence. Their wicked deeds can not be described in words. They created hatred in the minds of the people for Vedic lore by their wrong interpretations of the holy books. They did not spare the Yajna ritual and began to offer, animals in 'sacrifice.' For instance, in Gomedh Yajna, they sacrificed organs of 'cows' as oblations. Similarly, in Ajaymedh and Narmedh Yajna, they sacrificed organs of horses, goats and human beings. Thus they put an end to faith in the Vedas, the Yajnas and God. They preached that there was no God. The Vedas were no revelations, and that the world had come into being of its own. At such a climax Lord Mahavira was born. He preached 'non-violence' as the highest virtue. But when he expressed concern about the sacrifice of animal beings at Yajna, the Vam-margis could convince him that the Vedas permitted such sacrifices. They had interpreted the Vedas as it suited their selfish ends. It, somehow, prevailed upon Mahavira. He declared that he had no faith in the Vedas as he had not studied the Vedas himself. He preached about God and Atma. During that period, most of the religious and scientific books of the old Rishis were reduced to ashes.

It was about 2500 years ago that Lord Buddha saw the light of the day. He also preached the maxima of 'Ahimsa Parmodharma' (non-violence is the highest virtue) like

Mahavira far and wide. When the Vam-margis held religious discourses with Buddha, the former interpreted the Vedas to some extent, but the perverted interpretations, as given out by the Vam-margis, could not be removed from his mind. He came of a royal family. He renounced the world of passion, became a 'sanyasi' and preached the most recognised principle of 'Ahimsa Parmo-Dharma' in the world.

O Sages ! It was a about 2200 years ago, when vices thrived and the Vedic wisdom became extinct, that Mahatma Shankracharya was born. When he was about twelve years old, he said to his mother, "I find the world in the grip of ignorance and superstitions. The Vedic Wisdom is in a state of oblivion. As such I want to revive the ancient Vedic lore." The mother was highly pleased to learn that her son cherished such noble ideas as that of dispelling ignorance from the world. He held religious discourses about idol worship with the Jainis and the Buddhists. He offered to become an idol worshiper if he could be out-witted in logical discussions. In case he won he would destroy the idols.

O Sages ! I have seen Mahatma Shankracharya. Whenever he discussed about God and the individual soul, the opponents were left dumb-founded and he removed the idols from there. Once, in his life time, he probed into the mysteries of Vedanta. During this period, the Buddhists and the Jainis had installed idols in temples and people worshipped them. He advised the people to build their own temples and worship God.

O Sages ! This was followed by the advent of Yavanas and ignorance increased all the more. They, like the jainis, destroyed the scientific and Vedic works on which they could lay hands and also maltreated womenfolk. At such a time Mahatma Tulsidas was born. He was not a great scholar but his verses were of a high order. Through those verses he preached Dharma.

Pujyapad Gurudev

।। ओ३म् ।।

वियोग

सृष्टि के प्रारम्भ से ही काल चक्र अपनी नियमित गति से गतिशील है और मानव जिसको दृष्टिपात करते हुए भी अपनी कल्पनाओं के वशीभूत प्रायः प्रकृति के आवेशों में एक भ्रम का जीवन व्यतीत करने में संलग्न रहता है। परन्तु परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से कुछ आत्माओं को इस संसार में श्रेष्ठ कर्म करते हुए समाज कल्याण में अपना योगदान प्रदान करने का सौभाग्य भी प्राप्त होता रहता है। महापुरुषों के आश्रय में ही मानव समाज व राष्ट्र का उत्थान होता है। उसी धारा के प्रवाह में पूज्यपाद गुरुदेव के शुभाशीर्वाद एवम् सानिध्य में श्री कालूराम त्यागी व धर्म देवी श्रीमति प्रकाशवती निवासी दिनकरपुर, मुजफ्फरनगर का आने का सौभाग्य उनके ग्राम में आगमन पर ही प्राप्त हो गया था। उसी को शनैः शनैः श्रद्धा व विश्वास से परिपक्व करते हुए श्री कालूराम त्यागी जी पूर्णरूप से समर्पित हो गए और प्रवचनों का गहन अध्ययन करने लगें जो आज उनकी प्रतिभा में स्पष्ट झलकता है। उन्हीं की प्रेरणा व दर्शाए गए आदर्शों का श्रद्धा पूर्वक पालन करते हुए एक पुत्र का जन्म अपने गृह में प्रसाद रूप से प्राप्त हुआ। शिशु के बड़े होने पर शिक्षा ग्रहण करने के लिए पूज्यपाद गुरुदेव की छत्रछाया में ही श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह बरनावा, मेरठ में उसका प्रवेश करा दिया। वही शिशु शिक्षा पूर्ण करके श्री गुरुवचन शास्त्री जी के नाम से उसी विद्यालय में अध्यापन का कार्य कर रहा है और प्राप्त हुई वैदिक सम्पदा को यज्ञों के माध्यम से जिज्ञासु एवम् श्रद्धालुओं के सहयोग से पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा जागृत की गई ज्योति को निरन्तर प्रज्ज्वलित रखने व आगे गति देने में अपने जीवन को समर्पित भाव से प्रकाशमान कर रहा है।

समाज का कल्याण करने वाली आत्मा को राष्ट्र को समर्पित करते हुए पूज्यनीय माता जी श्रीमति प्रकाशवती जी 94 वर्ष की आयु में गृह को सभी सुख, शान्ति व आदर्शों से सम्पन्न करके अपने आत्म लोक को त्यागकर स्वतन्त्र रूप से विचरण करने के लिए 4 फरवरी 2017 को प्रातः काल की बेला में हम सब से दूर चली गईं और अपने जीवन के आदर्शों व उपलब्धियों का प्रमाण हम सबके लिए आचरण में लाने की प्रेरणा का स्त्रोत बहा गईं। ऐसी आत्मा अपने कर्मों के फलीभूत आनन्द से अपने लोक में विचरण कर रही होंगी।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

सदस्यता

पूज्यपाद महर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की ज्ञान गंगा का मासिक पत्रिका ''यौगिक प्रवचन'' में, वैदिक अनुसन्धान समिति द्वारा प्रकाशन किया जाता है और जिस के आजीवन सदस्य बनने के लिए शुल्क 800 रु. और वार्षिक सदस्य बने के लिए शुल्क 100 रु. है जिसको आप समिति के पते के साथ-साथ निम्न किसी एक पते पर भी डाक द्वारा भेजकर सदस्य बन सकते हैं–

1. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, प्रकाशन मन्त्री ए-59, पञ्चशील एन्क्लेव, नई दिल्ली-110017, फोन : 011-41030481

2. सुश्री नीरू अबरोल, कोषाध्यक्ष के-3, लाजपत नगर-III, नई दिल्ली-110024 फोन : 011-41721294

3. श्री जितेन्द्र चौधरी, प्रचार मन्त्री ए-84, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017, मोबाइल : 9811707343

योगनिष्ठ पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (शृङ्गी ऋषि जी) की अमृतवाणी संहिता के रूप में

*1.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 1)	80.00
*2.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 2)	80.00
3.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 3)	60.00
4.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 4)	60.00
5.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 5)	60.00
6.	Yogic Wisdom of Ancient Rishis	80.00
7.	वेद पारायण-यज्ञ का विधि विधान	25.00
8.	आत्म-लोक	35.00
9.	धर्म का मर्म	40.00
10.	शंका-निवारण	30.00
11.	यज्ञ-प्रसाद अर्थात् यज्ञ का महत्व	40.00
12.	आत्मा व योग-साधना	35.00
*13.	देवपूजा	50.00
14.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 1)	125.00
15.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 2)	125.00
16.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 3)	125.00
17.	रामायण के रहस्य	35.00
18.	यज्ञ एवं औषधि विज्ञान	40.00
19.	महाभारत के रहस्य	30.00
20.	अलङ्कार-व्याख्या	35.00
21.	रावण-इतिहास	50.00
22.	महाराजा-रघु का याग	30.00
23.	वनस्पति से दीर्घ-आयु	35.00
24.	मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	35.00
25.	चित्त की वृत्तियों का निरोध	35.00
26.	आत्मा, प्राण और योग	35.00
27.	पञ्च-महायज्ञ	35.00
28.	अश्वमेघ-याग और चन्द्रसूक्त	40.00
29.	याग-मन्जूषा	40.00
30.	आत्म-दर्शन	30.00
31.	पुत्रेष्टि-याग और मातृ-दर्शन	30.00
32.	याग और तपस्या	60.00
33.	यागमयी-साधना	35.00
34.	यागमयी-सृष्टि	35.00
35.	याग-चयन	40.00
36.	दिव्य-रामकथा	120.00
37.	ज्ञान-कर्म-उपासना	35.00
38.	दिव्य-ज्ञान	40.00
*39.	महाभारत एक दिव्य दृष्टि	90.00
40.	महर्षि-विश्वामित्र का धनुर्याग	40.00
41.	आत्म-उत्थान	40.00
42.	तप का महत्व	40.00
43.	अध्यात्मवाद	40.00
44.	ब्रह्मविज्ञान	40.00
45.	वैदिक-प्रभा	35.00
46.	प्रकाश की ओर	35.00
47.	कर्तव्य में राष्ट्र	40.00
48.	वैदिक-विज्ञान	35.00
49.	धर्म से जीवन	35.00
50.	आत्मा का भोजन	40.00
51.	साधना	35.00
52.	त्रेताकालीन-विज्ञान	40.00
53.	यज्ञोमयी-विष्णु	40.00
54.	यौगिक प्रवचन माला भाग-6	80.00
55.	स्वर्ग का मार्ग	40.00
*56.	यौगिक प्रवचन माला भाग-7	80.00
57.	माता मदालसा	50.00
58.	यौगिक प्रवचन माला भाग-8	80.00
59.	यौगिक प्रवचन माला भाग-9	80.00
60.	यौगिक प्रवचन माला भाग-10	80.00
61.	याग एक सर्वाङ्ग पूजा	80.00
62.	यौगिक प्रवचन माला भाग-11	80.00
*63.	यौगिक प्रवचन माला भाग-12	80.00
64.	मानव कल्याण की चर्चाएं	50.00
65.	प्रभु-दर्शन	50.00
*66.	यौगिक प्रवचन माला भाग-13	80.00
67.	समाज उत्थान का मार्ग	50.00
*68.	यौगिक प्रवचन माला भाग-14	80.00
*69.	ब्रह्म की ओर	50.00
70.	ईश्वर मिलन	50.00
71.	यौगिक प्रवचन माला भाग-15	80.00
72.	यौगिक प्रवचन माला भाग-16	80.00

*सहजिल्द का मूल्य 20 रु. अतिरिक्त है।

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

योगनिष्ठ पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की अमृतवाणी का साहित्य सँहिता, कैसेट्स, सी. डी. व डी. वी. डी. के रूप में निम्न स्थानों पर उपलब्ध हैः–

1. श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह, बरनावा, जिला–बागपत, (उ.प्र.)। मोबाइल नं 09719622950
2. श्री गुरुवचन शास्त्री, मकान नं. 165/30ए, दक्षिण भोपा रोड़, निकट माढ़ी की धर्मशाला, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)। मोबाइल नं. 09412888050
3. सुश्री. नीरू अबरोल, के-3 लाजपत नगर-3, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-41721294
4. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, A-59 पंचशील एन्क्लेव नई दिल्ली-110017 दूरभाष नं. 011-41030481
5. श्री जितेन्द्र चौधरी, ए-84, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017, मो. नं. 9811707343
6. श्री अनिल त्यागी, सी-47 रामप्रस्थ, गाजियाबाद (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-4165802
7. श्री आशीष त्यागी, डी-293, रामप्रस्थ, पोस्ट ऑफिस चन्द्रनगर, गाजियाबाद पिन कोड-201011 (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-2642052
8. श्री लोमश त्यागी, 106/4 पंचशील कालोनी गढ़ रोड़, मेरठ, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09410452076
9. श्री विवेक त्यागी, 16ए, अशोक कॉलोनी, अल्कापुरी, हापुड़, (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0122-2316196
10. श्री संजीव त्यागी, 1107, सैक्टर-3, बल्लभगढ़, फरीदाबाद हरियाणा। मोबाइल नं. 09910589486
11. मैं. हर्ष मेडिकोज, ए-2/31, सैक्टर-110–मार्किट नोएडा, फेस-2, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 9899228860, 9871367937
12. पवन त्यागी सुपुत्र श्री राजाराम त्यागी, मौ. खड़खड़ियान, माता, ग्राम खरखौदा, जिला मेरठ (उ.प्र.) मोबाइल नं. 7536097171
13. श्रीमती बाला, 251, दिल्ली गेट, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23282088
14. डॉ. अशोक कुमार आर्य, आर्यावर्त कालोनी निकट मुरादाबादी गेट, अमरोहा, जिला-जे.पी. नगर (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09412139333
15. श्री सुमन कुमार शर्मा, जे-380, सैक्टर बीटा-2, ग्रेटर नोएडा, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09313530505
16. श्री सतीश भारद्वाज, ग्राम बहेडी, रोहाना मिल, जिला मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)।
17. मैं. विजय कुमार, गोविन्द राम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23977216

मासिक सहयोग

श्री हरीराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली	1000 रुपये
श्री चिंतामणि त्यागी एवं श्री जगमोहन त्यागी बरला, मुजफ्फरनगर	1000 रुपये
श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद, हरियाणा	1000 रुपये
श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	500 रुपये
श्री विनोद त्यागी सुपुत्र श्री जयप्रकाश त्यागी मकनपुर, गाजियाबाद	500 रुपये
मा. कार्तिक त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
मा. लोमश त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
डॉ. शुचि, डॉ. राजीव चावला, आणद, गुजरात	250 रुपये
श्री राकेश शर्मा, विराट नगर, पानीपत, हरियाणा	250 रुपये
श्री कृष्ण लाल बत्रा, इन्द्री, जिला करनाल	201 रुपये
मास्टर कवन्धि, रामप्रस्थ, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	101 रुपये
मास्टर सिद्धार्थ, अँकुर अपार्टमैन्ट, दिल्ली	101 रुपये
मास्टर अभ्युदय त्यागी, न्यू जर्सी, अमेरिका	101 रुपये

सूचना

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज द्वारा संस्थापित वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी) दिल्ली को दानदाताओं द्वारा दान देने पर आयकर विभाग की धारा 80 जी के अन्तर्गत छूट 26-9-2914 को मिल गई है जो कि 2015-2016 से लागू है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

योगमुद्रा में प्रवचन करते हुए पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

उद्‌बोधन

हे प्रभु! आपको देवों का देव कहा है। क्यों कहा है, प्रभु? जो मनुष्यों के लिए देवता है जैसे बुद्धिमान, महान आत्माएँ संसार में मनुष्यों का कल्याण करने के लिए आती हैं और उपदेश देकर के यहाँ से समाप्त हो जाती हैं। उन देवताओं ने भी उस महादेव को अपना देव चुना। आज तुम्हें उस महादेव की शरण में जाना है। प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक देव कन्या को उस महादेव की शरण में जाना है। वह महादेव कल्याण करने वाला है। सृष्टि को नियन्त्रण में रखने वाला है। वह वास्तव में महादेव है।

पूज्यपाद-गुरुदेव